Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
January to March 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIII (53), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में नवउपनिवेशवाद का प्रभाव और किसान चेतना का स्वरूप

मनोज कुमार शर्मा *

* शोधार्थी (हिंदी) गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद (गुजरात) भारत

शोध सारांश – इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों ने नवउपनिवेशवाद के प्रभाव और किसान चेतना की जटिलताओं को अत्यंत यथार्थपरक, विचारोत्तेजक और संवेदनशील ढंग से अभिव्यक्त किया है। इन उपन्यासों में वैश्वीकरण, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का हस्तक्षेप, बाजारवाद, भूमि-अधिग्रहण, महाजनी शोषण और सरकारी नीतिगत असमानताओं के कारण उत्पन्न कृषि संकट को गहराई से चित्रित किया गया है। समकालीन उपन्यासकारों ने किसानों की आर्थिक, सामाजिक और मानसिक पीड़ाओं को उजागर करने के साथ-साथ उनके भीतर उपजी जागरूकता, आत्मसम्मान, प्रतिरोध और संगठन की भावना को भी प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है। इन रचनाओं ने साहित्य को सामाजिक यथार्थ का सजीव प्रतिबिंब बनाते हुए समाज और सत्ता को सवालों के कटघरे में खड़ा करने का कार्य किया है। इस प्रकार इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यास साहित्यिक सौंदर्य के साथ-साथ सामाजिक चेतना और परिवर्तन की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

शब्द कुंजी – नवउपनिवेशवाद, किसान चेतना, वैश्वीकरण, भूमि-अधिग्रहण, महाजनी सभ्यता, बाजारवाद, ग्रामीण जीवन, विस्थापन, सरकारी नीतियाँ।

प्रस्तावना – उपन्यास साहित्य सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है जो जीवन के विविध अनुभवों को गहराई से उकेरता है। इसमें लेखक समाज की जटिलताओं, मानवीय संवेदनाओं और परिवेश की परिस्थितियों को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि पाठक आत्मिक रूप से उससे जुड़ जाता है। उपन्यासों में सामाजिक विषमता, आर्थिक संघर्ष, स्त्री जीवन की विडंबनाएं, ग्रामीण परिवेश की कठिनाइयाँ, राजनीतिक उलझनें और मानसिक द्वंद्व जैसे विषय अत्यंत प्रभावशाली ढंग से चित्रित होते हैं। यह विधा जीवन की विविधताओं को चित्रित करते हुए उनके पीछे छिपी संवेदनाओं को भी पाठक के समक्ष सजीव कर देती है। इसी विशिष्टता के कारण उपन्यास साहित्य पाठकों को विचारशीलता और आत्मचिंतन की ओर प्रेरित करता है।

इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण तथा नवउपनिवेशवाद की अवधारणाओं ने राजनीतिक सत्ता व भू-राजनीतिक स्थितियों के साथ ही सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन को भी गहरे स्तर पर प्रभावित किया है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में ग्रामीण समाज और किसान जीवन की समस्याएँ सदैव से साहित्य का विषय रही है किंतु इक्कीसवीं सदी के परिप्रेक्ष्य में किसान जीवन की त्रासदी एक नये संकट के रूप में उभरी है। नवउपनिवेशवाद की वैश्विक शक्तियाँ, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रभाव, मुक्त बाजार व्यवस्था, भूमिगत पूँजीवादी शक्तियाँ तथा सरकार की नीतिगत असमानताएँ मिलकर उस कृषक समाज को अपने शिकंजे में ले चुकी हैं जो कभी आत्मनिर्भर, स्वावलंबी और प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध जीवन जीता था।

भारतीय कृषि व्यवस्था, महाजनी सभ्यता, पूंजीवादी सोच और सरकार की आर्थिक नीतियों ने किसान जीवन को सर्वाधिक प्रभावित किया है। इक्कीसवीं सदी में जब वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण और नवउपनिवेशवाद का नया दौर प्रारंभ हुआ तब किसानों की समस्याएँ और अधिक जटिल हो गईं। विदेशी पूंजी निवेश, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की खेती पर पकड़, बाजारवाद और आधुनिक तकनीक के अंधाधुंध प्रभाव ने किसानों को उनके मूल अस्तित्व से दूर कर दिया है। आज किसान अपनी ही भूमि से बेदखल हो रहा है, वह खेती छोड़ने को विवश हो गया है और उसका जीवन बाजार के उतार-चढ़ाव और सरकार की गलत नीतियों की भेंट चढ़ता जा रहा है।

हिंदी उपन्यासकारों ने इस संकटकालीन परिस्थिति को बड़ी संवेदनशीलता के साथ अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में किसानों की आर्थिक बदहाली, आत्महत्या, पलायन, विस्थापन और भूमिहीनता की समस्या का यथार्थ चित्रण हुआ है। साथ ही इन उपन्यासों में एक नई किसान चेतना भी देखने को मिलती है जिसमें संघर्ष की भावना, आत्मसम्मान की रक्षा और अपने अधिकारों के लिए लड़ने की प्रवृत्ति उभर कर सामने आई है। प्रस्तुत शोध पत्र में यह विश्लेषित किया गया है कि इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में नवउपनिवेशवाद का प्रभाव किसान के जीवन एवं चेतना पर यथार्थ रूप से हुआ है। उपन्यासकारों ने किसान जीवन की समस्याओं को चित्रित कर समकालीन समाज में इसकी प्रासंगिकता और भूमिका को भी प्रस्तुत किया है।

नवउपनिवेशवाद के प्रभाव का चित्रण – इक्कीसवीं सदी में नवउपनिवेशवाद की अवधारणा ने भारतीय समाज के विविध क्षेत्रों को प्रभावित किया है जिसमें सबसे अधिक आघात भारतीय ग्रामीण जीवन और विशेषत: किसान समाज को सहना पड़ा है। नवउपनिवेशवाद का स्वरूप भले ही प्रत्यक्ष राजनीतिक शासन न होकर आर्थिक, सांस्कृतिक और तकनीकी वर्चस्व के रूप में विकसित हुआ हो किंतु इसका वास्तविक प्रभाव

समाज के उस वर्ग पर सबसे अधिक पड़ा है जो साधनों से वंचित है, जिसकी अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है और जिसकी जीविका प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करती है। नवउपनिवेशवाद के कारण भारतीय कृषि व्यवस्था पूरी तरह से बाजार और विदेशी पूंजी के नियंत्रण में आती चली गई है।

किसान जो कभी अपनी भूमि का स्वामी और अन्नदाता कहलाता था आज वही किसान अपने ही खेत-खलिहानों से बेदखल कर दिया गया है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन, आधुनिक कृषि उपकरणों की महंगी व्यवस्था, रासायनिक उर्वरकों और बीजों की निर्भरता, भूमि अधिग्रहण की सरकारी योजनाएँ, कॉरपोरेट खेती की नीतियाँ तथा खुले बाजार की अराजक व्यवस्था ने किसानों को पूरी तरह असहाय बना दिया है। वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया ने कृषि को आत्मनिर्भरता की बजाय पूरी तरह से पूंजीवाद के जाल में जकड़ दिया है।

हिंदी उपन्यासकारों ने इस नवउपनिवेशवादी प्रभाव को बड़ी गंभीरता से अपने उपन्यासों में उकेरा है। शिवमूर्ति के आखिरी छलांग, पंकज सुबीर के अकाल में उत्सव, कुणाल सिंह के आदिग्राम उपाख्यान, संजीव के फाँस, मिथिलेश्वर के तेरा संगी कोई नहीं, एम.एम. चंद्रा के यह गाँव बिकाऊ है, कर्मेंदु शिशिर के बहुत लंबी राह, एस.आर. हरनोट के हिडिम्ब इन सभी उपन्यासों में नवउपनिवेशवाद के विविध प्रभावों का गहन चित्रण हुआ है। सुनील चतुर्वेदी के उपन्यास कालीचाट में यह चित्रण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है जिसमें किसानों के शोषण की प्रक्रिया को महाजन, बैंक, बिचौलियों और नेताओं की मिलीभगत से दिखाया गया है। किसानों को कर्ज के जाल में फँसाकर उनकी जमीन छीन ली जाती है। सम्पूर्ण उपन्यास में रेशमी और रूक्मणी के माध्यम से ग्रामीण किसान महिला की परिवार व समाज में स्थिति को चित्रित किया गया है यथा- 'दोनों एक दूसरे के दु:ख अच्छी तरह जानती थीं। फिर भी जब मिलतीं, अंदर का ज्वालामुखी रिसने लगता। दोनों एक दूसरे को सुनतीं। एक दूसरे के घाव सहलातीं और एक दूसरे का सम्बल बन जातीं।'

शिवमूर्ति कृत आखिरी छलांग उपन्यास नवउपनिवेशवाद के सामाजिक प्रभाव का सशक्त उदाहरण है। इसमें दिखाया गया है कि किस प्रकार वैश्विक नीतियाँ और सरकारी उपेक्षा किसान जीवन को आत्महत्या और पलायन की ओर धकेल रही हैं। 'हमारी सरपरस्त सरकार ही इस संकट को लाने की उत्तारदायी है। जिसकी नीतियों और षड़यंत्रों को चलते किसानों का जीवन दूभर हो रहा है किंतु अफसोस की बात यह है कि इनसे लड़ना तो दूर अधिकतर किसानों को इसकी पहचान तक नहीं है।'

उपन्यास में नवउपनिवेशवाद की विभीषिका किसानों के जीवन में व्याप्त आर्थिक असंतुलन और शोषण के माध्यम से अत्यंत सजीव रूप में चित्रित हुई है। उपन्यास में यह स्पष्ट किया गया है कि डीजल, बिजली, खाद, कीटनाशक, जोताई, मढ़ाई और मजदूरी जैसी आवश्यक कृषि सामग्रियों और सेवाओं की लागत तो हर वर्ष बढ़ती जाती है परंतु किसान की उपज का मूल्य स्थिर रहता है या और भी गिर जाता है यथा- 'डीजल, बिजली, खाद, कीटनाशक, जोताई, मढाई मजूरी सबका रेट तो हर साल बढ़ता है नहीं बढ़ता तो किसान की पैदावार का दाम। कष से उसक (किसान्मिए आलू का बीज खरीदने को लिये पैसा जाना पहाड़ हो जाता है। किस तरह आलू का रेट गिरकर दो रुपये से भी नीचे आ जाता है लेकिन किसान को घर से निकलते ही बाजार में उसका रेट फिर से दस रुपये किलो हो जाता है।'

पंकज सुबीर का अकाल में उत्सव उपन्यास भी इसी प्रवृत्ति का विस्तार है जिसमें किसान जीवन की गरीबी, भूख और बेबसी के बीच नवउपनिवेशवाद का बाजारवाद उनकी पीड़ा को और अधिक बढ़ा देता है। जयनंदन के उपन्यास सल्तनत को सुनो गाँव वालों में खेती के व्यवसायीकरण की समस्या को केंद्र में रखा गया है। यहाँ किसान चीनी मिल बंद हो जाने से ईख की खेती छोड़ने को विवश हो जाते हैं। गाँव की जमीन कृषि के अनुकूल होते हुए भी पानी की कमी के कारण सूख जाती है। यह उपन्यास इस बात को दर्शाता है कि नवउपनिवेशवादी प्रभाव ने केवल किसान की अर्थव्यवस्था ही नहीं बल्कि उसकी जीवन पद्धति को भी पूरी तरह बदल दिया है। उपन्यास में सरकारी नीतियों के विरुद्ध किसानों के विरोध को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है यथा-

'प्यार करने बाली लड़की नहर को दुरुस्त करने की मांग को लेकर आमरण अनशन पर बैठ गयी। बुर्के की सरहद से निकलकर सार्वजनिक हित में नेतृत्व की इस पहल पर पूरा इलाका एक हर्षमिश्रित आश्चर्य से भर उठा। बह मरणासन्न स्थिति पर पहुँच गयी, फिर भी प्रशासन या सरकार के किसी गुर्गे में कोई सुगबुगाहट नहीं हुई। लड़के ने कहा, 'अनशन तोड़ दो, सल्लनत। यह अंग्रेजों का राज नहीं है जब गांधी जी के उपवास और असहयोग अवज्ञा आंदोलन की भी नोटिस कर ली जाती थी। पिछले दस-पन्द्रह सालों में ऐसे बहुत कम उदाहरण है कि माँगे बिना टेरर और मिलिटेंसी के, बिना भारी नुकसान हुए पूरी हो गयी हाँ। आखिर अब हमारे पास बेहिसाब गोली, बम, बारूद है....इनसे जब तक रेल की पटरी न उड़े, विस्फोट न हो, लोग न मरे सरकार को क्यों जागना चाहिए?'

राजू शर्मा के उपन्यास हलफनामे में किसानों की आत्महत्या और सरकारी तंत्र की संवेदनहीनता का मार्मिक चित्रण हुआ है। आत्महत्या के पश्चात मुआवजा प्राप्त करने के लिए किसान के परिवार को वर्षों सरकारी कार्यालयों के चक्कर लगाने पड़ते हैं। अकाल में उत्सव उपन्यास में पंकज सुबीर ने रामप्रसाद के माध्यम से आम किसान की मौसम की मेहरबानी पर निर्भरता को प्रस्तुत किया है। मौसम के उतार- चढाव के साथ ही किसानों की उम्मीदों का ग्राफ भी ऊपर-निचे होता रहता है। किसान इन उतार-चढ़ाव के बीच अपने आप को कोसता रहता है। 'मैंने नहीं जाना जेठ की लू कैसी होती है और माघ की वर्षा कैसी होती है। इस देह को चीर कर देखो, इसमें कितना प्राण रह गया है, कितना जख्मों से चूर, कितना ठोकरों से कुचला हुआ। उससे पूछो, कभी तूने विश्राम के दर्शन किये, कभी तू छांह में बैठा। उस पर यह अपमान और वह अब भी जीता है, कायर, लोभी, अधम। उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अँधा हो गया था, मानो टूक-टूक उड़ गया है।'

इस प्रकार इन उपन्यासों में भूमि अधिग्रहण, महाजनी शोषण, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का विस्तार, सरकार की पूंजीवादी नीतियाँ, कृषि संकट, किसानों की आत्महत्या, मौसम की मार, बेरोजगारी, पलायन, सामाजिक विस्थापन और सांस्कृतिक क्षरण जैसे विविध पक्षों को अत्यंत यथार्थपरक शैली में प्रस्तुत किया गया है। यह चित्रण किसान जीवन की उस व्यापक त्रासदी को उद्घाटित करता है जो नवउपनिवेशवाद की वैश्विक नीतियों के प्रभाव से उत्पन्न हुई है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में नवउपनिवेशवाद का प्रभाव साहित्यिक विमर्श का अत्यंत गम्भीर और यथार्थवादी आयाम बन चुका है। इन उपन्यासों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि साहित्य केवल सौंदर्यबोध या कल्पना की अभिव्यक्ति नहीं है बल्कि वह समाज के यथार्थ

का प्रतिबिंब और परिवर्तन का माध्यम भी है।

किसान चेतना का स्वरूप – इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में किसान चेतना का स्वरूप अनेक स्तरों पर उभर कर सामने आता है। जहाँ एक ओर किसान नवउपनिवेशवादी नीतियों, सरकारी शोषण, पूंजीवादी व्यवस्था और सामाजिक असमानता का शिकार है वहीं दूसरी ओर वह अपने अधिकारों के प्रति भी जागरूक हो चुका है। समकालीन उपन्यासों में किसानों का यह नया स्वरूप दिखाई देता है जो संघर्षशील, आत्मसम्मानी और प्रतिरोध की भावना से युक्त है। यह चेतना कभी अपने खेत–खलिहानों की रक्षा के लिए भूमि अधिग्रहण के विरुद्ध आंदोलन के रूप में प्रकट होती है तो कभी आत्मसम्मान की रक्षा के लिए खेती छोड़ने से इंकार करने वाले किसानों के रूप में उभरती है।

किसान जीवन में संघर्ष की परंपरा कोई नवीन नहीं है किंतु इक्कीसवीं सदी में यह संघर्ष नवउपनिवेशवादी शक्तियों के विरुद्ध एक संगठित प्रतिरोध के रूप में परिवर्तित हुआ है। सुनील चतुर्वेदी के उपन्यास कालीचाट में किसान चेतना का यही स्वरूप देखने को मिलता है जहाँ किसान अपने गाँव और जमीन की रक्षा के लिए विदेशी कंपनियों के विरुद्ध एकजुट होते हैं। भीमसेन त्यागी के भूमि उपन्यास में भूमि अधिग्रहण की समस्या के विरुद्ध किसान आंदोलन का सशक्त चित्रण किया गया है।

शिवमूर्ति के उपन्यास आखिरी छलांग में पहलवान जैसे पात्र के माध्यम से यह संदेश दिया गया है कि किसान कितना भी अभावग्रस्त और संघर्षशील क्यों न हो उसकी आत्मा में अपनी भूमि और परिवार के प्रति असीम प्रेम और जिम्मेदारी की भावना सदैव जीवित रहती है। वह कर्ज से जूझता है, बच्चों की शिक्षा और शादी की चिंता करता है लेकिन खेती छोड़ना उसके लिए आत्मसमर्पण जैसा है। समय पर किश्तें न चुका पाने पर बढ़ता हुआ ब्याज, जमीन का बंधक हो जाना और अंतत: नीलामी की त्रासदी ये सभी घटनाएँ उस किसान की जिजीविषा को चुनौती देती हैं।

'खेती किसानी से इतनी आमदनी नहीं की जा सकती कि ट्रेक्टर की किस्त अदा की जा सको वे भी दलाल और बैंक मैनेजर के झाँसे में आकर फेंस जाते हैं। दो महीना खेती को लिये साल भर की किस्त ऊपर से किस्मत की मार बेटा बीमार पड़ जाता है कई किस्तें रुक जातीं हैं। ब्याज बढ़ने लगता है। जमीन बंधक हो जाती है और बैंक वाले सारी जमीन को असल की चौथाई कीमत पर नीलाम कर देते हैं।' लेकिन इन सबके बावजूद वह हार नहीं मानता, बल्कि भीतर ही भीतर एक जागरूकता, आत्मसम्मान और प्रतिरोध की भावना को संजोए हुए होता है। यही चेतना उसे एक साधारण कृषक से एक जीवंत सामाजिक प्रतीक में बदल देती है, जो व्यवस्था की निष्ठुरता के विरुद्ध साहित्यिक प्रतिवाद का प्रतिनिधि बनता है।

पंकज सुबीर के उपन्यास अकाल में उत्सव में किसान की यह चेतना और भी मुखर रूप में दिखाई देती है जहाँ रामप्रसाद के माध्यम से यह दिखाया गया है कि किसान हर विपरीत परिस्थिति में भी जीवित रहने की जद्दोजहद करता है। संजीव के उपन्यास फाँस में किसान जीवन की वास्तविक त्रासदी और उसकी चेतना का सशक्त चित्रण हुआ है। उपन्यास में किसान जिस तरह से कर्ज और बाजार व्यवस्था के जाल में फँसकर भी अपने परिवार की रक्षा करता है वह उसकी जिजीविषा और संघर्षशीलता का प्रमाण है। किसान के जीवन में भले ही अभाव और गरीबी हो लेकिन उसका आत्मसम्मान और श्रमशीलता उसकी सबसे बड़ी पूँजी है।

कुणाल सिंह के आदिग्राम उपाख्यान में भूमि अधिग्रहण के खिलाफ किसानों का संगठित संघर्ष दर्शाया गया है। किसान अपनी भूमि को अपने प्राणों की तरह समझता है और उसे छोड़ने की कल्पना भी उसके लिए असहनीय होती है। यही भावना मिथिलेश्वर के उपन्यास तेरा संगी कोई नहीं में भी देखने को मिलती है जहाँ बलेसर जैसे पात्र अपने बेटों के लाख प्रयासों के बाद भी अपनी भूमि छोड़ने को तैयार नहीं होते हैं।

राजू शर्मा के हलफनामे उपन्यास में किसान की सामाजिक और प्रशासनिक व्यवस्था से लड़ने की चेतना दिखाई देती है। उपन्यास का पात्र मकई मुआवजे के लिए सरकारी तंत्र से संघर्ष करता है और यह संघर्ष उसकी चेतना और आत्मसम्मान की नई परिभाषा गढ़ता है। 'बहुत बार मकई ने सोचा वह मुआवजे की अर्जी वापिस ले ले। उसे खत्म करा दे। उसके बाजुओं में इतनी ताकत है कि वह बाप का कर्ज खुद अदा कर सकता है, उसे सरकार का पाप का पैसा नहीं चाहिए। शासन के निर्लज्ज और भ्रष्टतन्त्र से उसके बाप का कद बहुत ऊँचा है। क्या स्वामीराम ने अपनी जिन्दगी में कभी सरकार के आगे हाथ फैलाया, मदद की गुहार की ? नहीं..'

आखिरी छलाँग उपन्यास की समीक्षा अनुसार 'सारे हालात मर जाने के है कि यह मर्मातक यातना उन सभी आत्महत्या किसानों का प्रतिनिधित्व करती है जिनकी संख्या पिछले एक दशक में लगभग दो लाख तक जा पहुँची है। किंतु पाँड़े बाबा की बस्ती पर जुटने वाली सभा में 'जिंदा क' से रहा जाए की चिंता को हल करने के उपाय किसानों को पता चलते हैं। उन्हें पता चलता है कि 'देवता पितर को लपसी सोहारी खिलाने और जल चढ़ाने से जान नहीं बचेगी, जान बचेगी कमर कसकर जूझने से।' कमर कसकर जूझने की यही सीख शिवमूर्ति की इस रचना का मंत्रव भी है और लक्ष्य भी।

एम.एम. चंद्रा कृत यह गाँव बिकाऊ है, कर्मेंदु शिशिर कृत बहुत लंबी राह, एस.आर. हरनोट कृत हिडिम्ब उपन्यासों में भी किसानों की संघर्षशील चेतना और आत्मसम्मान के विविध रूप प्रस्तुत किए गए हैं। इन उपन्यासों में किसान शोषित पात्र नहीं वरन् सामाजिक अन्याय और नवउपनिवेशवादी शक्तियों के खिलाफ आवाज उठाने वाला संगठित और संघर्षशील पात्र है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान चेतना का स्वरूप व्यापक, सशक्त और आत्मसम्मानी बना है। किसान जीवन की त्रासदी के साथ–साथ उसकी संघर्षशीलता, जागरूकता, संगठन शक्ति और आत्मगौरव की भावना ने समकालीन साहित्य में एक नई पहचान बनाई है जो सामाजिक यथार्थ के साहित्यिक दस्तावेज के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

उपर्युक्त विवेचनात्मक अध्ययन के विश्लेषण से स्पष्ट है कि इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों ने नवउपनिवेशवाद के प्रभाव और किसान चेतना की जटिलताओं को जिस सामाजिक संवेदनशीलता, यथार्थबोध और वैचारिक स्पष्टता के साथ चित्रित किया है वह हिंदी साहित्य की दिशा में एक गंभीर और प्रगतिशील हस्तक्षेप है। समकालीन उपन्यासकारों ने यह गहराई से अनुभव किया है कि भारतीय समाज का संतुलित विकास तभी संभव है जब कृषि व्यवस्था को सुदृढ़ और किसान जीवन को सुरक्षित बनाया जाए। उपन्यासों में भूमिगत आर्थिक शोषण, महाजनी सभ्यता, भूमिअधिग्रहण, आत्महत्या, पलायन, बाजारवादी मूल्य प्रणाली, और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते वर्चस्व जैसे विषयों को अत्यंत प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया गया है।

ये विषय न केवल सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित करते हुए साहित्य को जनमानस की पीड़ा, संघर्ष और चेतना से जोड़ते हैं। इन उपन्यासों में किसान जागरूक, संघर्षशील और आत्मसम्मान से भरा हुआ ऐसा व्यक्ति

बनकर उभरता है जो शोषण के विरुद्ध आवाज उठाता है और अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु संगठित होता है। हिंदी उपन्यासों ने इस चेतना को संवेदना के धरातल, विचार, प्रतिरोध और आत्मनिर्भरता के स्तर पर स्थापित किया है। यही इक्किसवीं सदी के किसान केंद्रित हिंदी उपन्यासों की सशक्त उपलब्धि है जिसने साहित्य को समाज की आत्मा से जोड़ते हुए यथार्थ के सजीव दस्तावेज के रूप में स्थापित किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सुनील चतुर्वेदी : कालीचाट, अंतिका प्रकाशन, 2015, पृ.38
2. शिवमूर्ति : आखिरी छलांग, राजकमल प्रकाशन, 2008, पृ.43
3. वही, पृ.47
4. जयनंदन : सल्तनत को सुनो गाँव वालों, वाणी प्रकाशन, 2005, पृ.1
5. पंकज सुबीर : अकाल में उत्सव, शिवना प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ.13
6. शिवमूर्ति : आखिरी छलांग, राजकमल प्रकाशन, 2008, पृ.52
7. राजु शर्मा : हलफनामें, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, संस्करण 2007, पृ.187
8. तरुण गुप्ता : भूमंडलीकरण, भारतीय किसान और शिवमूर्ति का लघु उपन्यास आखिरी छलाँग, पृ.6-7

****